श्रीहरिनाम

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद कृत

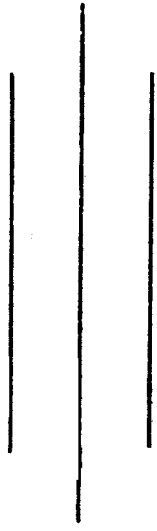

श्री चैतन्यमठ,
श्री मायापुर, नदिया ।

श्री श्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद

विरचित

श्रीहरिनाम

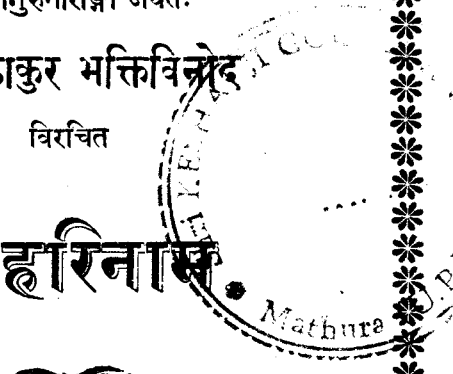

Mathura

ॐ विष्णु पाद १०८

श्री श्रील भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी ठाकुर

द्वारा प्रतिष्ठित

आकर मठराज श्रीचैतन्यमठ व तच्छाखा श्रीगौडीयमठ

के

वर्तमान सभापति व आचार्य

त्रिदण्डीपाद श्रील भक्तिविलासतीर्थ महाराज

द्वारा सम्पादित

प्रकाशक :—

श्री अनिरुद्ध ब्रह्मचारी भक्तिप्रकाश

श्री परमहंसमठ

नैमिषारण्य, सीतापुर (उ० प्र०)

❀ दो शब्द ❀

श्रीगौराङ्ग महाप्रभु की मंगलकारिणी परम्परा में प्रादुर्भूत श्रील श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने जिन ग्रन्थों के द्वारा भक्तिमार्ग का दिव्य सन्देश प्रदान किया है उनमें 'श्रीहरिनाम' ग्रन्थ भी एक है। इसी का हिन्दी रूपान्तर यहाँ उपस्थित किया जा रहा है। हरिनाम प्रेमी महानुभाव इस ग्रन्थ के द्वारा हरिनामामृत का आस्वादन कर अपने जीवन को सार्थक करेंगे।

आचार्यपीठ, बरेली} —राघवाचार्य

प्रथम संस्करण १०००

श्री श्रीराधाष्टमी वासर २२ हृषीकेश, ४७२ श्रीगौराब्द,

३ आश्विन, १३६५ बंगाब्द,

२० सितम्बर १९५८ खृष्टाब्द।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर (ग्रन्थकार)

श्री चैतन्यमठ मायापुर एवं इसके तत्त्वावधान में प्रतिष्ठित श्री गौड़ीयमठ एवं अन्य प्रतिष्ठान समूह

१—श्री चैतन्यमठ पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

२—श्री गौड़ीयमठ ५० बी०, नैपाल भट्टाचार्य फर्स्ट लेन, कालीघाट, कलकत्ता—२६

३—चेतला गौड़ीयमठ, १०६, राखालदास आढ्य रोड, कलकत्ता-३७

४—श्री मुरारी गुप्त का पाठ, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

५—नदिया प्रकाश प्रिण्टिङ्ग वर्क्स, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

६—श्री चैतन्यमठ दातव्य औषधालय, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

७—श्री परा विद्यापीठ, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

८—चाँद काजीका समाधि-पीठ वामन पुकुर, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

९—श्री श्रीधर अँगन, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

१०—ठाकुर भक्तिविनोद इन्स्टीट्यूट (हाई इंगलिश विद्यालय) पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

११—ठाकुर भक्तिविनोद जूनियर बेसिक स्कूल, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

१२—श्री अद्वैत भवन, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

१३—श्री योगपीठ, श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्मस्थान, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया (प० बंगाल)

१४—श्री श्रीवास आँगन, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया

१५—श्री स्वानन्द सुखद कुञ्ज, गोद्रुम द्वीप, पो० स्वरूपगंज, जि० नदिया (प० बंगाल)

१६—श्री सुवर्ण विहार गौड़ीयमठ, पो० स्वरूपगंज, जि० नदिया (प० बंगाल)

१७—श्री मध्यद्वीप गौड़ीयमठ, राउताड़ा, पो० कृष्णनगर, जि० नदिया (प० बंगाल)

१८—श्री एकायनमठ, पो० हंसखाली, जि० नदिया (प० बंगाल)

१९—श्री महेश पण्डित का पाठ, कांठालपुली, पो० चाकदह, नदिया

२०—श्री गौर गदाधर मठ, चाँपाहाटी, पो० समुद्रगढ़, जि० वर्धमान

२१—श्री सार्वभौम गौड़ीयमठ, विद्यानगर, पो० जाननगर, जि० वर्धमान

२२—श्री मोदद्रुम गौड़ीयमठ, मामगाछी, पो० जाननगर, जि० वर्धमान

२३—श्री रुद्रद्वीप गौड़ीयमठ, श्रीनाथपुर, पो० श्री मायापुर, जि० नदिया

२४—श्री प्रपन्न आश्रम, बामनपाड़ा, पो० मुन्सीहाट, जि० हावड़ा

२५—श्री गौड़ीयमठ, बामनडांगा, हावड़ा

२६—श्री गौड़ीयमठ, पो० अमरसी, जि० मेदिनीपुर

२७—श्री सरभोग गौड़ीयमठ, पो० चकचका, जि० कामरूप, (आसाम)

२८—त्रिदण्डी गौड़ीयमठ, पो० भुवनेश्वर, जि० पुरी (उड़ीसा)

२९—श्री नीलकुटी, पो० स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)

३०—श्री पुरुषोत्तम गौड़ीयमठ, पो० स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)

३१—श्री रामानन्द गौड़ीयमठ, पो० कोवूर, जि० पश्चिम गोदावरी (आन्ध्र)

३२—श्री गौड़ीयमठ, श्री गौड़ीयमठ रोड, मद्रास-१४

३३—श्री गौड़ीयमठ, दामुद कुण्ड, पो० चिरकुन्दा, जि० मानभूम

३४—श्री कुञ्जविहारीमठ, पो० राधाकुण्ड, जि० मथुरा (यू० पी०)

३५—श्री ब्रज स्वानन्द सुखद कुञ्ज, पो० राधाकुण्ड, जि० मथुरा (यू० पी०)

३६—श्री गोष्ठविहारीमठ, शेषशायी, पो० होड़ल, गुरगाँव (पंजाब)

३७—श्री गोष्ठवाटी, पो० राधाकुण्ड, जिला मथुरा (यू० पी०)

३८—श्री गोवर्धनपीठ, पो० गोवर्धन, जि० मथुरा (यू० पी०)

३९—श्री सारस्वतगौड़ीयमठ, पो० हरिद्वार, जि० सहारनपुर (यू० पी०)

४०—श्री परमहंसमठ, पो० नैमिषारण्य, जि० सीतापुर (यू० पी०)

४१—श्री माध्व गौड़ीयमठ, नरीन्दा, ढाका (पूर्वी पाकिस्तान)

४२—श्री गोपालजीमठ, कमलापुर, ढाका (पूर्वी पाकिस्तान)

४३—श्री गदाई गौरांगमठ, पो० बालियाटि, जि० ढाका (पूर्वी पाकिस्तान)

जय हरिनाम

जय जय जय हरिनाम, चिदानन्दामृतधामा ।
जय जय जय परतत्त्व, सदा जग-जन-विश्रामा ॥
करि जीवन पर दया, अहो अक्षर-आकारा ।
निज जन पर करि कृपा, नाम रूपहि अवतारा ॥
जय जय जय हरिकृष्णनाम, सब जन-मन-रञ्जन ।
हे प्रभु नाम ! तुम्हारे विनु, को है भवभञ्जन ॥
होइ अकिञ्चन, दीन जबहि, जो तुमहि पुकारे ।
तीनहु ताप विनाश किये, तुम तिनहि उबारे ॥
लिङ्गभङ्ग छनमाहि होत, तुम्हरे परतापा ।
जय जय हरिनाम, हरण संसृति-संतापा ॥

—कृष्ण

श्री श्रीगोद्रुमचन्द्राय नमः

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद कृत

❀ श्रीहरिनाम ❀

परमेश्वर की कृपा विना इस दुस्तर भवसागर से पार होने का अन्य कोई उपाय नहीं है यद्यपि जीव जड़ वस्तु से श्रेष्ठ है तथापि वह स्वभाव से ही दुर्बल व पराधीन है, एक मात्र भगवान् ही जीव के नियन्ता, पालक व त्राता हैं। जीव अनुचैतन्य, होने के कारण परमचैतन्य के अधीन है तथा उसका सेवक है। परम चैतन्य भगवान् ही जीव के आश्रय हैं, यह जड़ जगत् माया से निर्मित है, जड़ जगत् में जीव की अवस्थिति केवल दण्डजनित कारावास के तुल्य है। भगवान् के विमुख रहने से अर्थात् भगवान् पर विश्वास न होने तथा भगवद्भजन से विमुख रहने से जीव माया का संश्रय लेता है और माया की ओर आकृष्ट होता है, भगवान् के सम्मुख (भगवद् भजन के विना) होने के अतिरिक्त माया से छुटकारा मिलने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है, भगवद्विमुख जीव ही मायाबद्ध रहता है, अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर का ध्यान व भजन नहीं करता वही मायाजाल में फंसा रहता है। भगवदनुजीवी—भगवान की सेवा व भजन करने वाला—जीव ही मुक्त होता है।

माया से जकड़े हुए जीवगण साधन करने से भगवत्कृपा प्राप्त करते हैं, तथा भगवत्कृपा प्राप्त होने से माया की सुदृढ़

रस्सी को तोड़ डालने में समर्थ होते हैं, महर्षियों ने अनेक विचार करके तीन प्रकार के साधनों का निर्णय किया है ये हैं (१) कर्म, (२) ज्ञान और (३) भक्ति।

वर्णाश्रमधर्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, योग, इत्यादि नाना प्रकार के कर्माङ्ग शास्त्रों में उल्लिखित हैं। इन समस्त कर्मों के भिन्न भिन्न फल हैं यह सब शास्त्रों में कहा गया है। इन सब फलों का पृथक् पृथक् विचार करने पर देखा जाय तो स्वर्गभोग, मर्त्य-सुखभोग, सामर्थ्य, रोगशांति और उच्च कार्य के लिये अवकाश यही सब प्रधान फल हैं। 'उच्च कार्य के लिये अवकाश' इस फल को यदि अन्य फलों से अलग किया जाय तो और सब फल मायिक प्रतीत होते हैं, स्वर्गभोग, मर्त्यसुखभोग, ऐश्वर्य आदि सामर्थ्य जो जीव कर्म के द्वारा लाभ करते हैं वह सब नश्वर हैं। भगवान द्वारा रचित कालचक्र में यह समस्त समुदाय विनष्ट हो जाते हैं, इन सफल फलों से मायाबन्धन दूर नहीं होते वरन् वासना से लिप्त रहने के कारण और दृढ़ होते हैं। उच्च कार्य के लिये अवकाश रूप फल भी यदि उच्च कार्य न किया जाय तो निरर्थक होता है, जैसा श्रीमद्भागवत में लिखा है:—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वकसेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

अर्थात् मनुष्यों का अनुष्ठित किया हुआ धर्म यदि भगवत्कथा में रति (प्रेम) को उत्पन्न नहीं करता है तो वह केवल श्रम मात्र ही है।

वर्णाश्रमरूप धर्म का मूल (मुख्य) तात्पर्य यही है कि **स्वभाव के अनुसार सांसारिक व शारीरिक कर्मों के अलग अलग विभागानुसार परिपालन करने से जीव अनायास ही संसार व शरीर की यात्रा का निर्वाह करेगा। (शारीरिक कर्मों के विभागानुसार अनायास ही मनुष्य की सांसारिक व शारीरिक जीवन यात्रा का निर्वाह होगा)।**

ऐसा होने से हरिकथाश्रवण, कीर्तन व मनन करने के लिये बहुत अवकाश का लाभ प्राप्त होगा, यदि कोई व्यक्ति उत्तम रूप से वर्णाश्रमधर्म का अनुष्ठान करके भी हरिचर्चा के द्वारा हरिकथा में रति (प्रेम) लाभ नहीं करता तब उसका धर्मानुष्ठान कार्य केवल परिश्रममात्र है और निरर्थक होता है। केवल कर्म द्वारा ही निश्चय रूप से भवसागर पार नहीं हो सकता, यह संक्षेप रूप से कहा है।

ज्ञान की चर्चा जीव को उच्चगतिलाभ का साधन कही गई है। अर्थात् ज्ञान की चर्चा करते रहने से जीव उच्च गति प्राप्त कर सकता है, ज्ञान का फल आत्मशुद्धि है। आत्मा जड़ातीत वस्तु है इस बात का स्मरण न रहने पर जीव जड़ाश्रित होकर कर्म मार्ग में भ्रमण करता है।

ज्ञानचिन्तन के द्वारा जीव इस को समझने लगता है कि मैं जड़ वस्तु नहीं वरन् चिन् वस्तु हूँ इस तरह का ज्ञान स्वभाव से ही निष्कर्म नाम से अभिहित है इसका अर्थ यह है कि चिद्वस्तु का नित्यधर्म जो चिदास्वादन है, वहां से आरम्भ नहीं होता। इस अवस्था का व्यक्ति तो 'आत्माराम' है। लेकिन जब चिदा-

स्वादन रूप चित् क्रिया आरम्भ होती है तब से निष्कर्म नहीं रहता इसीलिये महर्षि नारद ने कहा है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत — भाव — वर्जितम् ।
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥

नैष्कर्म्यरूप निरञ्जन ज्ञान जब तक अच्युतभाव से विहीन रहता है तब तक शोभा नहीं देता ।

अब प्रश्न होता है कि तब क्या होता है अतएव भागवत में कहा है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्व्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥

परमचैतन्यस्वरूप हरि में ऐसा एक असाधारण गुण है जो समस्त जड़तामुक्त आत्माराम ज्ञानीसमूह को आकर्षण करके अपने भक्तिरूप कार्य में नियुक्त करता है ।

अतएव सदवकाशप्रदानपूर्वक एवं निज नैष्कर्म्यस्वरूपपरित्याग-पूर्वक ज्ञान को जब भक्तिसाधन में नियुक्त करते हैं तभी कर्म व ज्ञान को साधनाङ्ग कहा जायेगा । कर्म व ज्ञान की अपनी कोई साधनाङ्गता स्वीकृत नहीं हुई अतएव भक्ति को ही साधन कहा गया है । कर्म व ज्ञान भक्ति के आश्रय में आने पर ही कभी साधन होते हैं । किन्तु भक्ति तो स्वभाव से ही साधनरूपा है । यथा भागवत एकादशस्कन्ध में कहा गया है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

हे उद्धव ! कर्मयोग, सांख्ययोग वर्णाश्रमधर्म वेदपाठ, तपस्या या वैराग्य कोई भी मुझे प्रसन्न नहीं कर सकते, तीव्र भक्ति ही केवल मुझको प्रसन्न कर सकती है।

भगवान् के प्रसन्न करने का भक्ति के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है। साधनभक्ति, श्रवण, कीर्तन आदि भेद से नौ प्रकार की है (१) श्रवण (२) कीर्तन (३) स्मरण (४) पादसेवन (५) अर्चन (६) वन्दन (७) दास्य (८) सख्य (९) आत्मनिवेदन उनमें श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही प्रधान साधनाङ्ग हैं, भगवान् के नाम, रूप, गुण, और लीला इन चारों विषयों का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण होता है। उनमें नाम ही आदि व सर्वबीज-स्वरूप है। अतएव हरिनाम ही सकल उपासनाओं का मूल है। अतएव बृहन्नारद पुराण में कहा गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

हरिनाम ही मेरा जीवन है, हरिनाम ही मेरा जीवन है, हरिनाम ही मेरा जीवन है इस कलिकाल में इस नाम को छोड़कर जीव की कोई अन्य गति नहीं है, अन्य गति नहीं है, अन्य गति नहीं है।

अपिच—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

कलिकाल में ही नहीं परन्तु हर युग व हर काल में हरिनाम को छोड़कर जीव की अन्य कोई गति नहीं है। विशेषतः कलिकाल में तो मन्त्रादि साधन दुर्बल होने से केवल हरिनाम ही एक मात्र

अवलम्बनीय है क्योंकि हरिनाम सब की अपेक्षा वीर्यवान् तथा श्रेष्ठ है।

सत्युग में भगवान् विष्णु का ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञ करने से द्वापर में विष्णु की पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है वह कलियुग में हरिकीर्तन से ही प्राप्त होजाता है।

हरिनाम क्या है इसके विषय में पद्मपुराण में लिखा है—

कृते यत् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्हरिकीर्तनात्॥
नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

इस श्लोक की व्याख्या में श्री जीव गोस्वामी जी ने लिखा है:—

एकमेव सच्चिदानन्दरसादिरूपं त्वं द्विधाविर्भूतमित्यर्थः।

श्री कृष्णतत्त्व अद्वय सच्चिदानन्द स्वरूप है। उनका दो प्रकार से आविर्भाव हुआ है। अर्थात् नामी रूप से श्रीकृष्णविग्रह है और नाम रूप से 'श्रीकृष्ण' नाम है। इसका मूल तत्त्व यह है कि कि श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् हैं शक्तिमान् जो पुरुष हैं उनका समस्त प्रकाश ही उनके शक्तिमान् होने का आभास देता है तथा उनकी शक्ति का प्रकाश ही उनका प्रकाश है। शक्ति, आधारभूत शक्तिमान् पुरुष का प्रकाश अन्य जीवों के निकट प्रकाशित करती है।

शक्ति के दर्शन प्रभाव द्वारा कृष्णरूप प्रकाशित होता है एवं आह्वय-प्रभाव द्वारा कृष्णनाम विज्ञापित होता है। अतएव कृष्णनाम

चिन्तामणिस्वरूप, कृष्णस्वरूप व चैतन्यरसविग्रहस्वरूप है। नाम सर्वदा पूर्णस्वरूप है अर्थात् उससे भक्तियोग के द्वारा "कृष्णाय, नारायणाय" इत्यादि मन्त्रादि निर्माण की अपेक्षा नहीं करते। कृष्ण नाम उच्चारण करने से ही कृष्णरस चित्तत्त्व में सहसा उदित होता है। नाम सर्वदा विशुद्ध है अर्थात् जड़ीय अक्षरादि की तरह जड़ाश्रय नहीं है, नाम केवल चैतन्यरसमात्र है, नाम सर्वदा मुक्त है अर्थात् नित्यमुक्त है। कभी जड़ से उत्पन्न नहीं हुआ है। जिन्होंने नामरस पान किया है वे ही लोग केवल इस व्याख्या को समझ सकते हैं, जो लोग नाम में जड़ता का आरोप करते हैं, वे लोग नाम के चैतन्यरसास्वादन में अक्षम हैं, वे लोग इस नामव्याख्याश्रवण से प्रीति लाभ नहीं कर सकते। यदि यह कहो कि सर्वदा हम लोग जो नाम उच्चारण करते हैं, वह तो जड़ अक्षरों का आश्रय लेकर ही है अतएव इस स्थल पर नाम को जड़जात वस्तु कहना होगा, और इसको नित्यमुक्त वस्तु नहीं कह सकते। इस बहिर्मुख तर्क का निरस्तीकरण (खंडन) करने के लिये श्री जीवगोस्वामी जी ने लिखा है—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

प्राकृत वस्तु ही इन्द्रियग्राह्य है, कृष्णनामादि अप्राकृत हैं वह कभी इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं। यह नाम तब जिह्वा से प्रकाशित होता है जब अप्राकृत आत्मा के आनन्द से भर जाने पर इन्द्रियों में स्फूर्ति का संचार होता है। भक्ति जिस समय आत्मा की अप्राकृत

जिह्वा से कृष्णनाम उच्चारण करती है तब वही उच्चारित परम तत्त्व (कृष्णनाम) प्राकृत जिह्वा में आविर्भूत होकर नृत्य करता है। आनन्द से हास्य, स्नेह द्वारा क्रन्दन और प्रीति से नृत्य जैसे अप्राकृत रसों की इन्द्रियपर्यन्त व्याप्ति होती है, उसी प्रकार कृष्णनाम रस की भी जिह्वा पर्यन्त व्याप्ति होती है। प्राकृत जिह्वा में कृष्णनाम का जन्म नहीं होता है, साधनकाल में जिस नाम का अभ्यास किया जाता है वह वास्तविक नाम नहीं है। उसको छायासंगीत नामाभास कहा जाता है। नामाभास से जीव की क्रमोन्नति विधिक्रम से अनेक स्थलों में अप्राकृत नाम में रुचि हो गई है। वाल्मीकि व अजामिल के जीवन चरित्र की आलोचना करने से यह बात स्पष्ट हो जावेगी। जीव के अपराधी रहने से नाम में रुचि नहीं रहती अपराध शून्य होकर जो कृष्णनाम ग्रहण करते हैं उनके हृदय में चैतन्यरसविग्रह रूप व अप्राकृतरूप हरिनाम का उदय होता है। अप्राकृत नाम के उदय होने से हृदय उत्फुल्ल हो जाता है और आंखों में अश्रुधारा व देह में सात्विक विकार उत्पन्न होते हैं, अतएव भागवत में ऐसा कहा है—

तदश्मसारं हृदयं तवेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

जीव जिस समय हरिनाम ग्रहण करेगा तब उसका हृदय अवश्य विकृत होगा। नेत्रों से अश्रुधारा बहेगी और रोमांच होगा, जिन्होंने कृष्णनाम का उच्चारण करके ऐसा विकार का नाम प्राप्त नहीं किया उनका हृदय अपराध के द्वारा अत्यन्त कठिन हुआ है।

निरपराध होकर हरिनाम ग्रहण करना साधु का नितान्त कर्तव्य है। अतएव अपराध वर्जन के लिये अपराध कितने प्रकार का है यह जानना अत्यावश्यक है। पद्मपुराण में कहा है—

(१) सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते।
यतः ख्यातिं यातः कथमु सहते तद्विगर्हाम॥

(२) शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलम्।
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरि नामा हितकरः॥

(३) गुरोरवज्ञा (४) श्रुतिशास्त्रनिन्दनम् (५) तथार्थवाद (६) हरिनाम्नि कल्पनम् (७) नामबलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः।

(८) धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्व शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः।

(९) अश्रद्दधाने विमुखेऽश्रृण्वति यश्चोपदेशः शिवनामापराधः।

(१०) श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितो नरः।
अहंममादिपरमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत्॥

दशविधनामापराध ये हैं—

(१) साधुनिन्दा (२) शिवादि देववृन्द को कृष्ण से पृथक् ईश्वरबुद्धि, (३) गुरुअवज्ञा (४) श्रुतिशास्त्र निन्दा अर्थात् सत् शास्त्र निन्दा (५) हरिनाम में अर्थवाद (६) हरिनाम प्रकारान्तर में अर्थ कल्पन (७) नामबल से पाप बुद्धि (८) अन्य शुभ कर्मों के साथ नाम को तुल्यज्ञान (९) श्रद्धाहीन मनुष्य को नाम का उपदेश (१०) श्री नाम माहात्म्य सुनकर भी जड़ अहं ममादि-भाव प्रयुक्त

(देह मैं हूँ और देह का सम्बन्ध जो है वही मेरा है यही भाव हृदय में होने के हेतु) श्री नाम में अप्रीति।

साधु व भक्तगणों के प्रति अश्रद्धाप्रकाश व साधुचरित्र या वृत्ति वाले महापुरुषों की निन्दा करना हरिनाम के प्रति अपराध होता है।

अतएव जो लोग नामाश्रय करेंगे उनके लिये वैष्णव-अवज्ञा प्रवृत्ति सर्वतोभावेन त्याज्य है। वैष्णवों के कार्य में सन्देह होने से सहसा निन्दा न करके उनके तात्पर्य का अनुसन्धान करना चाहिये। अतएव साधुओं के प्रति श्रद्धा करना नितान्त आवश्यक है। भगवान् से शिवादि देवताओं का भिन्न ज्ञान करना हरिनामापराध में गण्य होता है। भगवत्तत्व एक एवं अद्वितीय है शिवादि देवताओं की भगवान् से भिन्न सत्ता नहीं है। शिवादि देवतागण भगवान् के गुण का अवतार हैं अथवा भगवान् का भक्त जानकर सम्मान करने से भेद ज्ञान नहीं रहता है। जो लोग महादेव को एक पृथक् देवता मानकर शिव व विष्णु की पूजा करते हैं वे लोग शिव की भगवत् सत्ता को नहीं मानते, अर्थात् वे लोग शिव को भगवान् का अंशावतार मानकर प्रमाद से भगवान् ही समझ बैठते हैं, ऐसा करने से वे सब लोग विष्णु व शिव दोनों के प्रति अपराधी होते हैं, जो लोग हरिनाम का आश्रय करते हैं उन लोगों को ऐसे ज्ञान का विशेषरूपेण त्याग करना परम कर्तव्य है।

गुरु की अवज्ञा करना एक नाम अपराध है। जिन से भगवत् तत्त्व अवगत होता है वही आचार्यरूप में भगवत् प्रेष्ठ हैं, (भगवान्

के सबसे प्रेमी हैं) उनकी दृढ़भक्ति करके हरिनाम में अचलश्रद्धा-लाभ करना परम कर्तव्य है।

सत्-शास्त्र की निन्दा करना अवश्यमेव परित्याज्य है। अनादि वेद शास्त्र व तदनुगत स्मृति शास्त्र जिनसे भागवत धर्म जाना जाता है, उन शास्त्रों की निन्दा करने से हरिनामापराध होता है। वेदादि शास्त्रों में सर्वत्र ही हरिनाम का माहात्म्य कीर्तित हुआ है। यथा :—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

वेद, रामायण व पुराणों में आदि अन्त व मध्य में सर्वत्र हरि का नाम ही गाया गया है।

इस प्रकार सत् शास्त्र निन्दा करने से हरिनाम में किस प्रकार प्रेम होगा? बहुत से लोग यह समझ लेते हैं कि वेदादि शास्त्र में हरिनाम का जो माहात्म्य कीर्तित हुआ है वह केवल नाम की प्रशंसामात्र है। जिन लोगों की ऐसी बुद्धि है वे सब लोग नामापराधी हैं उन लोगों को हरिनाम का फल उदित नहीं होता। अन्यान्य कर्मकाण्ड में जैसी रुचि उत्पादन के लिए फलश्रुति कही गई है, हरिनाम की फल श्रुति को जो लोग उसी प्रकार मानते हैं वे लोग बहुत ही दुर्भागी हैं। जो लोग सौभाग्यवान् हैं वे सब लोग ऐसा विश्वास करते हैं—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्॥

इस प्रकार निर्विद्यमान अकृतोभय अभिलाषी योगियों के लिये हरिनाम का कीर्तन करना ही एक मात्र कर्तव्य निर्णीत किया गया है। जिन लोगों का ऐसा विश्वास है उन्हीं लोगों को हरिनाम का फलोदय होता है। अर्थात् हरिनाम से प्रेम उत्पन्न होता है।

नामाभास और नाम के भेद को न जानते हुये अनेक लोग समझते हैं कि नाम अक्षरमय है अतएव श्रद्धा न करते हुये भी नामादि का ग्रहण कर लेने से ही फललाभ होगा वे लोग अजामिल का इतिहास और इस शास्त्र वचन का उदाहरण देते हैं कि—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ (भागवत)

अर्थात् सांकेत, परिहास, स्तोभ और हेला इन चार प्रकार के छाया नामाभास को शास्त्र समस्त पाप नाशक बताते हैं।

पहिले ही कहा गया है कि नाम चैतन्यरसविग्रह है। इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है, ऐसे स्थलों पर निरपराधपूर्वक नामाश्रय न करने से नाम का फलोदय सम्भव नहीं है। श्रद्धाविहीन लोगों के नाम उच्चारण करने का फल यही होगा कि बाद में श्रद्धायुक्त नाम हो सकता है। अतएव दुष्ट रूप से अर्थवाद करके नाम को जो लोग जड़ात्मक अक्षरस्वरूप कहते हैं और कर्मकाण्ड का अङ्ग कहकर व्याख्या करते हैं वे सब लोग नितान्त बहिर्मुख व नामापराधी हैं वैष्णव जनों को नामापराध यत्नपूर्वक अवश्य त्यागना चाहिये।

बहुत से लोग हरिनाम आश्रय करके यह समझते हैं कि हम लोगों ने समस्त पापों की महौषधि प्राप्त करली है इस विश्वास

के साथ वे लोग ठगी झूठ बोलना, लम्पटता इत्यादि पापाचरण करके पुनः हरिनाम उच्चारण कर इन सब पापों को नष्ट करने का मिथ्या प्रयत्न करते हैं। वे सब लोग नामापराधी हैं जो नामाश्रय करते हैं वे चिद्रस का आस्वादन करके पुनः जड़ीय या असत् वस्तु में आसक्त नहीं होते। उन लोगों का पापाचरण सम्भव नहीं है। पुनः पुनः पाप करके नाम का लेना केवल शठता है। यह अपराध अत्यन्त गुरुतर है अतएव सर्वथा परित्याज्य है।

बहुत लोग समझते हैं कि यज्ञादि कर्म दानादि धर्म, तीर्थ-यात्रादि सकल चेष्टा जैसे शुभकार्यों की तरह ही नाम भी है। जिन लोगों की इस प्रकार की बुद्धि है वे सब नामापराधी हैं। शास्त्र में कहा है—

गोकोटिदानं ग्रहणेषु काशी,
माघे प्रयागे स च कल्पवासी।
यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं,
गोविन्दनाम्ना न कदापि तुल्यम्॥

अपिच स्कन्द पुराणे—

गोकोटिदानं ग्रहणे खगस्य,
प्रयागगंगोदककल्पवासः
यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं,
गोविन्दनाम्नः न समं शतांशैः॥

सूर्य ग्रहण में करोड़ों गोदान, प्रयाग में गंगा तट में कल्प भर वास, अयुतयज्ञ व पर्वतपरिमाण सुवर्णदान ये सब गोविन्द

नामकीर्तनाभास के शतांश के एक भाग के समान भी नहीं है।

नाम सर्वदा चिद्-रस स्वरूप है, अन्यान्य समस्त सत् कर्म जड़ मय हैं, अतएव नाम से वह सब सत् कर्म अलग हैं जो लोग नाम के सहित इन सब शुभ कर्मों की साम्यविवेचना करते हैं उन लोगों ने प्रकृत (वास्तविक) नाम रस का आस्वादन नहीं किया है। हीरे और कांसे में जो भेद है हरिनाम व अन्यान्य शुभकर्मों में भी तद्रूप वस्तुगत भेद है।

श्रद्धाहीन व्यक्तियों को जो हरिनाम का उपदेश करते हैं वे भी नामापराधी हैं। सूअर को मुक्ताफल देने से जिस प्रकार कोई लाभ नहीं होता केवल मुक्ताफल का ही अपमान होता है इसी प्रकार नाम के प्रति जिनमें उपयुक्त श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई है उन्हें उपदेश देना नितान्त अन्याय है। अन्यान्य जीवों की जैसी हरिनाम में श्रद्धा हो वैसा ही करना चाहिये, श्रद्धा होने पर नाम का उपदेश करना चाहिये, जो लोग अपने अन्दर गुरुअभिमान की भावना लेकर कुपात्र को हरिनाम का उपदेश देते हैं वे लोग नामापराध से अधःपतित होते हैं।

नाम का माहात्म्य श्रवण करके भी जो नाम में ऐकान्तिक श्रद्धा न करके अन्यान्य साधन उपायरूप कर्मज्ञान का आश्रय त्याग नहीं करते हैं वे सब लोग भी नामापराधी होते हैं।

इस प्रकार दश प्रकार के नामापराधों को वर्जित किये बिना हरिनाम उदित नहीं हो सकता।

कलिजनों का उद्धार करने वाले श्री श्रीमहाप्रभु श्रीचैतन्यदेव

ने जगत् जीवों के नाना प्रकार के क्लेश व दुःखों को देखकर दयार्द्र चित हो यह उपदेश दिया है।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

अपने को तृण से भी तुच्छ समझकर तथा वृक्ष के समान सहिष्णु होकर व स्वयं अभिमान शून्य होकर दूसरों का यथायोग्य सम्मान करते हुये जीव हरिनामकीर्तन का अधिकारी होता है। व्यवहारशुद्धि के साथ हरिनामग्रहण की व्यवस्था ही इस वचन का मुख्य तात्पर्य है। जो लोग सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी अपने आपको विनय व नम्रता के कारण सबसे हीन समझते हैं वे लोग कभी साधुनिन्दा नहीं करते हैं, शिवादि देवताओं की भेदबुद्धि द्वारा अवमानना नहीं करते, गुरु की किसी प्रकार से भी अवज्ञा नहीं करते, सत् शास्त्रों की निन्दा नहीं करते, हरिनाम के माहात्म्य को यथार्थ जानकर मानते हैं शुष्कज्ञानजनिततर्कद्वारा हरि शब्द में निर्गुण ब्रह्मवाद की कल्पना नहीं करते। नाम का सहारा लेकर पापाचरण नहीं करते। अन्यान्य सत् शास्त्रों के साथ हरिनाम की समानता स्थापित नहीं करते। श्रद्धाहीन व्यक्तियों को हरिनाम का उपदेश देकर हरिनाम के प्रति उपहास की उत्पत्ति नहीं करते एवं नाम में किञ्चिन्मात्र भी अविश्वास नहीं करते हैं वे लोग स्वभाव से ही इन दश नामापराधों का वर्जन करते हैं, वे लोग (साधु लोग) चाहे कोई उनका उपहास करे अथवा अपकार करे तब भी अपकारी के प्रति प्रतिशोध लेने की भावना नहीं रखते

हैं, वरञ्च उपकार ही करते हैं। वे लोग जगत् के समस्त कार्यों को करते हुये स्वयं कर्ता व भोक्ता होने का कोई भी अभिमान नहीं करते। वे लोग अपने को जगत् का सेवक समझकर सर्वदा जगत् की सेवा के लिये व्रती रहते हैं।

इस प्रकार अधिकारी व्यक्ति के मुँह से जिस समय हरिनाम उच्चारित होता है तब अन्तःस्थित चित् जगत् से विद्युत् अग्निन्याय के समान शीतफलक व्याप्त होकर जगत् जीवों का मायाविकार-रूप अन्धकारनाश करता है अतएव हे महात्मगण ? अपराध-शून्य होकर सर्वदा हरिनाम को ग्रहण कीजिये, हरिनाम को छोड़कर जीव का अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है। हरिनाम के बिना जीव का कोई आश्रय नहीं है। इस दुस्तर भवसागर में तैरते हुये ज्ञान कर्मादि आश्रयग्रहण केवल तृण धारण करके महासागर उत्तीर्ण करने की इच्छा के समान नितान्त निरर्थक है। अतएव हरिनाम रूपी महापोत (जहाज) का आश्रय लेकर इस दुस्तर भवसागर को पार कीजिये।

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

"भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति
कृष्णप्रेम कृष्णदिते धरे महाशक्ति ।
तारमध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम संकीर्तन
निरपराधे नाम लैले पाइ प्रेमधन ।।"

—श्रीचैतन्यचरितामृत

चौंसठ प्रकार के भजनाङ्गों में नवविधा भक्ति ही श्रेष्ठ है, यह भक्ति कृष्णप्रेम तथा साक्षात् कृष्ण लाभ प्राप्त करवाने में महाशक्ति रखती है। इस नवधा भक्ति में भी सर्वश्रेष्ठ नाम संकीर्तन ही है किन्तु अपराध रहित होकर नाम संकीर्तन करने से ही कृष्णप्रेमरूपी धन प्राप्त होता है।

यह ग्रन्थ डाक्टर श्री पवित्रमोहन गुहा जी की भक्तिमति सहधर्मिणी श्रीमती रेणुका रानी जी की भगवद् सेवा का निदर्शन स्वरूप है।

श्री चैतन्यमठ द्वारा प्रकाशित कुछ बहुमूल्य पुस्तकों की सूची

1 साधन संकेत

2 शरणागति

3 श्रीहरिनाम

4 श्रीगौराङ्गस्मरण मंगलस्तोत्रम्
(हिन्दी अनुवाद सहित)

5 श्रीसिद्धान्त दर्पणम्

6 सारांश वर्णनम्

7 सटीक शिक्षादशक मूलम्

8 गौड़ीयमठस्य परिचय

9 Sri Chaitanya Mahaprabhu
(His life and precept)

10 Sri Chaitanya Mahaprabhu

11 Rai Ramanand

12 The Vedanta

13 Relative worlds

14 Sri Chaityanya Math

15 Dharma and its Facets

16 A general conception of Bhakti

17 Nam Bhajan

आचार्य प्रेस, बरेली।